

संस्कृत नाटक विकास

संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास क्रमशः वैदिककाल से ही प्रारंभ हो गया था। इस संदर्भ में प्रो. इन्द्रपाल सिंह “इन्द्र” का कथन उल्लेखनीय है - वेदों में ऐसे संकेत अवश्य मिलते हैं जिनसे वैदिककाल में नाटकों की स्थिति सिद्ध होती है। ऋग्वेद के सूक्तों में सोमविक्रय के समय होने वाले अभिनय का पता चलता है। महाव्रत स्रोत के अवसर पर कुमारियाँ नृत्य गान के साथ अग्नि की परिक्रमा करती थी। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता के तीसवें अध्याय की छठी कण्डिका में “शैलूष” शब्द आया है, जिसका अर्थ है- अभिनेता। कहा जाता है कि एक सूत को नृत्य के लिए और शैलूष को गाने के लिये नियुक्त किया जाना चाहिये। सामवेद के स्रोत रागबद्ध हैं ही जिससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में संगीत पूर्ण विकासावस्था में था। संगीत के अलावा नृत्य तथा वाद्य के भी संकेत प्राप्त होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक युग में वे सभी उपादान प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे जो नाटक के विकास के लिए अपेक्षित हैं।

वेदों के पश्चात् रामायण एवं महाभारत में भी नाटक के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत में “रामायण नाटक” तथा “कौबेर रंगाभिसार” नामक नाटकों के नाम आये हैं। महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला तथा नट का प्रयोग है। रामायण में भी “नट”, “नाटक”, “रंग” तथा नर्तक का अनेक स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनि ने भी ‘अष्टाध्यायी’ में पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः’ द्वारा नाटकों की पूर्व रचना का आभास दिया है।

चतुर्थ शती ई.पूर्व के कौटिल्यीय “अर्थशास्त्र” के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नट, नर्तक, गायक, वादक, प्लवक, कुशीलव, सौमित्र तथा चारण आदि नाटकादि करके अपना जीवकोपार्जन करते थे।

बौद्ध ग्रन्थों में “विनयपिटक” के “चुल्लवग्ग” में एक कथा है कि अश्वजित तथा पुनर्वसु अभिनय देखने के पश्चात् नर्तकी के साथ प्रेमालाप कर रहे थे तो उन्हें महास्थविर ने विहार से तत्काल निष्कासित कर दिया था। अतएव इस समय में भी नाट्यकला भारतव्यापी हो गई थी। पतंजलि ने “महाभाष्य” में “कंसवध” तथा “बलिबन्ध” दो नाटकों का नामोल्लेख किया है। महाभाष्य में “रसिको नटः” पद सिद्ध करता है कि पतंजलि के समय रस सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान था।

उक्त विवरण से सिद्ध होता है कि नाटकों की उत्पत्ति भारत में हुई तथा वह वैदिक काल से ही क्रमशः विकसित होता हुआ अपने उन्नत स्वरूप को प्राप्त हुआ। वर्तमान में उपलब्ध जो रूपक हैं , उनमें नाटककार भासविरचित रूपक सबसे प्राचीन है - ऐसी अधिकांश विद्वानों की मान्यता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भास संस्कृत नाट्य साहित्य के आद्य नाटककार हैं।

संस्कृत नाटक की विशेषताएँ

संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटकों का अध्ययन करने पर उनकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं -

1. संस्कृत नाटकों में वस्तु, नेता एवं रस इन तत्वों को प्रमुख स्थान दिया गया है। इन्हीं तत्वों के आधार पर रूपकों का विभाजन किया गया है - “वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः।” रूपक के दस भेद हैं जिनमें नाटक प्रथम भेद है।
2. जहाँ तक कथावस्तु का सम्बन्ध है, अधिकांश नाटकों की कथावस्तु ऐतिहासिक एवं पौराणिक है। रामायण एवं महाभारत की कथावस्तु को आधार बनाकर अधिकांश नाटक लिखे गये हैं।

3. जहाँ तक नेता अथवा पात्रों का सम्बन्ध है, कथावस्तु के अनुरूप ही पात्रों को रखा गया है। कुछ नाटक ऐसे भी हैं, जिनमें समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व है, जैसे शूद्रकविरचित “मृच्छकटिक”।
4. उक्त तीनों तत्वों में भी रस को सर्वाधिक प्रधानता दी गई है। संस्कृत नाटककारों द्वारा कथावस्तु की यथार्थता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना प्रेक्षकों अथवा पाठकों के हृदय में किसी रस विषेष का संचार करने की ओर। कवि की सफलता का मानदण्ड रसाभिव्यक्ति का माना गया है। रस को ही नाट्यकला का प्रधान लक्ष्य माना गया। शृंगार अथवा वीर रस में से किसी एक को प्रधान रस इन नाटकों में माना गया है, शेष सहायक रसों के रूप में प्रयुक्त हुये हैं।
5. नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार अधिकांश संस्कृत नाटकों का नान्दी पाठ प्रस्तावना (स्थापना) आदि से प्रारंभ किया गया है तथा “भरतवाक्य” से समाप्ति की गई है।
6. 5 से लेकर 7 अंकों तक की संख्या इन प्रमुख संस्कृत नाटकों की है। अधिकांश नाटक 6 व 7 अंकों के हैं।
7. संस्कृत नाटकों में पात्रानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है। उत्तम कोटि के पात्र संस्कृत का प्रयोग करते हैं तथा अन्य पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं।
8. संस्कृत नाटकों का प्रधान गुण अभिनेयता है। इनकी संवाद योजना अत्यन्त आकर्षक है। परन्तु अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट समय एवं स्थान की अन्विति (Unities of Time and place) का प्रायः इन नाटकों में अभाव है, क्योंकि अनेक संस्कृत नाटकों में काव्यत्व पक्ष बलवान् हो गया है।
9. अधिकांश संस्कृत नाटक सुखान्त लिखे गये हैं। परन्तु यह कथन युक्तिसंगत नहीं कि संस्कृत में दुःखान्त नाटकों का नितान्त अभाव है। यदि दुःखान्त नाटक का अर्थ नायक के शोक, पराभव और मृत्यु

का चित्रण करना है तो इस दृष्टि से “कर्णभार”, “उरुभंग”, वेणीसंहार और चण्डकौशिक निष्चित रूप से दुःखान्त नाटक माने जाने चाहिये।

10. नायक एवं नायिका के अतिरिक्त विदूषक की भी संस्कृत नाटकों में महत्वपूर्ण भूमिका है।

11. संस्कृत नाटकों में प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगत होता है। अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति का इन नाटकों में सुन्दर समन्वय किया गया है। अन्तः प्रकृति की सूक्ष्म एवं सुकुमार भावनाओं के चित्रण के लिए बाह्य प्रकृति चित्रफलक का कार्य करती है। प्रकृति का मानवीकरण भी संस्कृत रूपकों की अपनी विशेषता रही है। इनमें मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। कालिदास के “अभिज्ञान शाकुन्तलम्” में शकुन्तला की विदाई के समय प्राकृतिक उपादानों की स्थिति का सजीव कारुणिक वर्णन हृदय को सहज भावाभिभूत करने वाला है -

12. संस्कृत नाटकों में भावतत्व की प्रधानता है। भावों का सूक्ष्म अंकन तथा उनमें काव्योचित सौन्दर्य को समाहित करने में ही संस्कृत नाटककार का सर्वाधिक प्रयत्न देखा जाता है। यही कारण है कि संस्कृत नाटकों के अभिनय में उतनी सरलता नहीं दृष्टिगत होती, जितनी पाश्चात्य नाटकों में सहज संभव होती है। संस्कृत का नाटककार कवि हृदय होने के नाते भावों को ही गांभीर्य का जनक समझता है, वह कोरी कलात्मकता को महत्व नहीं देता।

13. संस्कृत रूपकों में कथानक भी काव्यशिल्प के अनुरूप चलता है। कथानकीय प्रवाहिकता के आद्यन्त निर्वाह में पाँच अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं एवं संधियों की योजना होती है। अभिनय की स्थिति विशेष के रूप में भारती, सात्वती कैशिकी एवं आरभटी में से कोई एक वृत्ति अपनायी जाती है।

14. प्रभावोत्पादकता संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषता है। प्रभावोत्पादकता का मूल कारण यह है कि संस्कृत नाटकों में नाटककार भूतकालीन घटना के अभिनय को इस प्रकार प्रस्तुत करता है, मानों वह पाठकों अथवा प्रक्षेकों को उसका प्रत्यक्ष आभास करा रहा हो। इस प्रस्तुति द्वारा पाठकों से घटना के साक्षात् सम्पर्क की अनुभूति ही नाटक को महाकाव्य अथवा उपन्यास की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक बना देती है।